नूतन निष्काम पत्रिका

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-10 * अंक-3 * मुम्बई * मार्च-2019 * मूल्य-रु.9/-

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

नये साल की शुभकामनाये

आर्य मुसाफिर पं. लेखराम

विद्या देवी (भगतसिंह की माँ)

रल्ली देवी (सुखदेव की माँ)

शहीद सुखदेव

शहीद सरदार भगतसिंह

शहीद शिवराम राजगुरु

मेराशत्रु : मेरा मित्र

महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती

दिल सियह है, बाल सब अपने हैं पीने में सफ़ेद।
घर के अन्दर है अँधेरा, और बाहर चाँदनी ।।

मेरे मन ! मेत्र तू मित्र भी है और शत्रु है। तुने क्या-क्या खेल खेलाये हैं! कैसे-कॅसे नाच नचाये हैं! कहाँ-कहाँ लिये फिरा है ! कब से मेरी नाक में नकेल डाले मुझे घुमा रहा है ! कितने जन्म बीत गए, कितने युग चले गये, कितनी सृष्टियाँ बनी और बिगड़ गई, कब से तू मुझे लिये फिर रहा है? बतला तो सही ! आखिर कब तक अभी और कितने युगों, कितनी सृष्टियों, कितने प्रलयों, और महाप्रलयों तक तू मेरी गर्दन पर सवार रहेगा? बहुत हो चुकी, अब बस कर। थक गया हूँ तेरी इस यात्रा से, तेरे इन खेलों और तमाशों से। कुछ दया कर ! मेरे टूटे हुए शरीर को देख, मेरी टेढ़ी पीठ की और निहार मेरी थकी हुई आँखों में झाँककर देख, मेरे श्वेत केशों को देख ! कितनी ही बार ऐसी याचनाएँ कितने ही जन्मों में कर-चुका है, परन्तु तू पत्थर का बना है या लोहे का, तूने मेरी कोई टेर नहीं सुनी। तू बार-बार मुझे कहीं-से-कहीं घसीटता हुआ लिये जा रहा है, मेरा एक एक अंग टूटा जाता है। मेरे शरीर कई बार पिस गये... कभी तो विषय-वासनाओं के नुकीले काँटों में उलझा देता है, तब एक-एक नस नाड़ी से रक्त प्रवाहित हो जाता है। मैं तड़पता हूँ और तू मेरी तड़प को देखकर खिलखिलाकर हँस देता है। और निर्दयी ! कभी तू क्रोध के जलते अंगारों की अंगीठी में मुझे फेंक देता है, मेरे शरीर का एक एक रोम कम्पायमान हो जाता है, सब-कुछ जलने लगता है, आँखें लाल अंगारा बन जाती हैं, सारा शरीर ही जलने लगता है, और तू इस तमाशे को चुपचाप देखता रहता है। तुने मेरा सब-कुछ लूट लिया है। मेरे देह-राज्य में तूने विप्लव मचा दिया। न आँखे काबू में रही हैं, न हाथ, न पाँव, न दूसरी इन्द्रियाँ। यह सारे-का-सारा देह राज्य, जिसका मैं राजा कहलाता हूँ, बाग़ी हो चुका है। मेरी आज्ञा बिना ही यह कभी ज्वर को मेरी राजधानी में ले आता है, कभी किसी और रोग को। मैं चाहता कुछ और हूँ, यह करता कुछ और है। इसी प्रकार ओ मन ! तूने मेरे आनन्द के केन्द्र में भी हलचल मचा दी है। ओ षड्यन्त्र रचनेवालों में शिरोमणि ! तूने मेरा सब-कूछ लूटा दिया है। मै अब न राजा हूँ, न धनी, कोई भी सम्पत्ति मेरे पास नहीं रही। सब-कुछ तु छीनकर ले गया तो फिर अब मुझे कंगाल को छोड़ दे। रखने की शक्ति नहीं रही, तू चाबुक पर चाबुक लगाये जा रहा है। मेरी वेदना का, मेरी पीड़ा का, मेरी चिल्लाहट का और हाहाकार का तुझे कोई विचार नहीं आता ! बस, अब बहुत हो चुकी। अब और सहन की शक्ति नहीं है। मैं अब तेरे चंगूल से मुक्त होता हूँ। परन्तु और ! यह क्या? तू फिर मुझे लिये जा रहा है? कहाँ पटकेगा तू अब मुझे?

आकाशवाणी–

यह नहीं सुनेगा कुछ भी। यह तो तेरा सत्यानाश ही कर देगा। बचना है, तो एक ही उपाय है और वह यह कि अब तू इस पर सवार हो जा और इसे नकेल डालकर दृढ़ता से पकड़ रख ! और फिर देख, यही मन जो तेरा शत्रु बना हुआ है, तेरा मित्र बनता है या नहीं। इसकी कोई बात न मान। यह खटाई खाने को माँगे तो इसे लवण दे, यह सैर करने को कहे तो कोठरी में बन्द कर दे, यह कोठरी में बैठे रहने को कहे तो इसे लम्बी यात्रा पर ले जा।

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मन की मति चलिए नहीं, पलक–पलक मन और ।।

परिवर्तन–

अब तो तू प्यारे ! मित्र बन गया न? कितना अच्छा है तू, कितना आज्ञाकारी, कितना भला है तू! मेरे कितने ही बिगड़े काम सुधार दिये। मेरा हर काम कितनी ही तेजी से तू कर देता है और अब काम समाप्त करके किस उत्सुकता से तू फिर 'ओ३म' के जाप में लग जाता है। याद है तुझे उस दिन की बात, जब मैंने तुझे कहा था 'आज भगवान् के पास ले चलो'। तब तूने कहा 'मेरी गति वहां नहीं। हां भगवान के द्वार पर ले चलूँगा। उसे खटखटाकर भीतर जाने की आज्ञा भी ले दूंगा। परन्तु अन्दर नहीं जा सकूँगा।' और तब मैंने कहा था 'हाँ ऐसा ही सही, और तु मुझे मेरे अच्छे मन! अपने ऊपर सवार करके ले गया था। कितनी मनोहर थी वह यात्रा ! कैसे दृष्य आये थे ! कितने सुन्दर बाजे बजते थे ! ऐसा प्रतीत होता था कि कोई बहुत निपुण वंशी बजा रहा है। तब एकदम ऐसी सड़क की और तुम मुड़े थे कि जहाँ सन्नाटा था, सब-कुछ ठहरा हुआ था-निस्तब्ध, एकदम निस्तब्ध ! वायु भी नहीं चलती थी। प्राण अपान में मिलकर धीरे-धीरे नहीं, अपितु तेजी से, परन्तु पूर्ण शान्ति के साथ जा रहा था। उस समय एकदम सहस्त्रों सूर्य और चाँद भी एक-साथ प्रकाशित हो उठे थे। इतना प्रकाश था और ऐसा प्रकाश था कि जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती। उसी क्षण एक अतीव सुन्दर-मनोहर रंग-बिरंगा फाटक खुला था। उसके खुलते ही न जाने तु कहाँ चला गया,और तु ही क्यों? तब तो मुझे अपना भी पता नहीं रहा। न सूर्य रहे थे, न चाँद, न ही कुछ और। फाटक खुलते ही वह कुछ देखा जिसका वर्णन करने के लिए वाणी सारा बल लगाती है, परन्तु एक शब्द तो क्या, एक अक्षर भी नहीं कह सकती। आँखों ने देखा तो है पर वे मेरी आँखें न थीं वे कोई और ही थीं। मेरे मित्र ! एक बार फिर वहीं ले चलो। तुझसे मैं अब और कोई काम तो लेता नहीं, इसी मुख्य कार्य के लिए तुझे निश्चित कर रक्खा है। मेरा तू कोई और काम कर या न कर, परन्तु इस काम को करने पर मैं तुझे बाधित करता हूँ। मुझे तू वैकुण्ठ में न ले चल, भक्त-देश में भी न ले चल; मुझे तू किसी और स्वर्ग की भी सैर न करा; मुझे तो वहीं लें चल, जहाँ प्रीतम के दर्शन से खुशहाल हो गया हूँ-

कहा करूँ वैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावने, जहँ प्रीतम गल बाँह ।।

ओ मेरे मन ! तू अब कितना अच्छा हो गया है! मेरी प्रत्येक शुभकामना को पूर्ण करने में तू भरसक प्रयत्न करता है। मुझे अब वे पहली गन्दगियाँ पसन्द नहीं होती, न ही वे शरारतें अब तुझे आती हैं। क्यों भैया, वे पहली बातें याद करके तुझे लज्जा तो अवश्य आती होगी? कहो, तब आनन्द था या अब? दूसरों की गर्दनें काटने में अधिक खुशी मिलती थी या अब दूसरों के जीवन बचाने में अधिक प्रसन्नता होती है? अपने उस जीवन, इस जीवन को देख। भगवान् का धन्यवाद कर कि तेरे अन्दर परिवर्तन पैदा हो गया-

पहले यह मन काग था, करता जीवन–घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुन–चुन खात ।।

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : १० अंक ३ (मार्च –२०१९)

- दयानंदाब्द : १९५, विक्रम सम्वत् : २०७५
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११९

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री, लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क
— पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/– — एक प्रति : रु. ९/–
— १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/– — वार्षिक : रु. १००/–
— १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/– — आजीवन :रु. १०००/–
— विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।
वर्गीकृत विज्ञापन
रु. १०/– प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/–
चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विट्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई –५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
मेराशत्रु : मेरा मित्र	२
सम्पादकीय	३
अथर्ववेदीय प्रार्थना-विधान	४-५
सुख-दु:ख की समस्या	६-७
चाणक्य नीति दर्पण	८-९
विचार शक्ति का चमत्कार	९
महर्षि दयानन्द सरस्वती जी भारत की ...	१०-११
जड़ोपासना श्रेयस्कर नहीं	१२-१३
सद् व्यवहार	१४
अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती	१५-१६

सम्पादकीय

* पाकिस्तान को सुधरने की आवश्यकता *

पुलवामा हमले का हमारी सेना ने जो कड़क व दरियादिली से मुहतोड़ ज़वाब दिया है उसके लिए हमारी सेना व सरकार दोनो बधाई के पात्र हैं। वास्तव में यह कोई हमला नहीं बल्कि आतंकवाद को खत्म करने का एक छोटा सा प्रयास है। किंतु अफ़सोस की बात है कि पाकिस्तान इसे मानने को तैयार नहीं। आखिर वो करे भी तो क्या करे ? अगर इस अटैक को कबूल करता है तो यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि उन ठिकानों पर आतंकवादी रहते थे और अगर नहीं कबूलता तो उसको ज़हर का घूंट पीकर चुप रहना होगा। दोनो सूरते हाल में उसकी मुश्किलें हैं जैसे गले में फंसी हड्डी न निगलते बनती है न निकालते।

आख़िर हमने उसका बिगाड़ा ही क्या है? पाकिस्तान को तो हमारा शुक्रिया करना चाहिए आखिर भारतमाता ने अपना पेट चीर कर उस देश को जन्म दिया है, इसके लिए इस मां ने जितनी प्रसव वेदना झेली है वह अवर्णनीय है। जिस काश्मीर को जलाने की व हड़पने की उसकी कोशिशें जारी है वह भी भारत का एक अभिन्न अंग है। इस काश्मीर पर पाकिस्तान का कोई हक़, कोई दावा बनता ही नहीं।

बस एक जेहाद के जुनून में बहकर एक अहिंसावादी पड़ोसी देश को तंग करना कोई इंसानियत नहीं है न ही कोई धार्मिक कर्म।

पाकिस्तान को शायद यह इल्म नहीं कि जिस आतंकवाद को वह हमारे लिए यूज़ कर रहा है वही आतंकवाद उसकी ज़मीन को भी खोखला कर रहा है, नेस्तनाबूद कर रहा है।

उम्मीद है इस धटना से पाकिस्तान सबक लेगा और इसको सकारात्मक ढंग से स्वीकार करता हुआ अपने देश से आतंकवाद का खात्मा करेगा अन्यथा उसे भयंकर दुष्परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

सन्दीप आर्य
मो.: ९९६९ ०३७ ८३७

अथर्ववेदीय प्रार्थना-विधान

डॉ. भवानीलाल भारतीय

परमात्मा का भक्त तथा उपासक जब यह जान लेता है कि जिस पराशक्ति ने उसे इस संसार में भेजा है तथा मानव का यह दिव्य जीवन प्रदान किया है तो उस सर्वैश्यर्य सम्पन्न परमेश्वर के लिए उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह नाना प्रकार के भक्ति गीतों से उसका स्तवन करे। उसकी कृपा, दया तथा आशीर्वाद की याचना करे तथा स्वल्प समय के लिए ही सही, समर्पण भाव से स्वयं को उसके समक्ष सेवक के रूप में प्रस्तुत करे। दयानन्द सरस्वती ने परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ईश्वर के यथार्थ गुणों का वर्णन उसकी स्तुति है, शुभ कर्मो की सिद्धि हेतु स्वयं सम्पूर्ण पुरुषार्थ को करने के साथ उससे सहायता की याचना प्रार्थना है जब कि समर्पण भाव से भक्ति पुरस्सर प्रभु के समीप स्वयं को ले जाना उसकी उपासना है।१ उप+आसन, निकट जाना या बैठना ही उपासना का मूल भाव है।

वैदिक प्रार्थना की अपनी विशेषता है । उपासक यह जानता है कि परमात्मा उसके जनक-जननी, गुरु-आचार्य तुल्य शिक्षक, सर्वोपरि शासक तथा सुहृद् मित्र हैं। सच्चिदानन्द लक्षण युक्त होने से परमात्मा का सामीप्य भक्त में परमानन्द की भावना पैदा करता है। वैदिक भक्त की प्रार्थना मैं दैन्य, आत्मग्लानि, आत्मपीड़न तथा आत्म-धिक्कार का भाव नहीं होता। तथापि उसमें विनम्रता, समर्पण तथा आज्ञानुवर्ती होने का भाव तो रहता ही है। भारत के मध्यकालीन भक्तिवाद में एक बड़ा दोष उस समय देखा गया जब यहां के वैष्णव भक्तों ने वेदों की उदात्त तथा ओजोयुक्त शिक्षाओं की उपेक्षा की तथा अपनी ग्लानि एवं दीनता युक्त प्रार्थनाओं के द्वारा लोगों में हीनता, कदर्यता तथा अपराध बोध को जगाया। स्वयं को तुच्छ, दीन, हीन , पराधीन तथा पापों का पुञ्ज बता कर ये भक्त जन लोगों के समक्ष कौन सा आदर्श उपस्थित कर रहे थे, यह कहना कठिन है। मध्यकालीन भक्ति द्वारा प्रसरित यह आत्मग्लानि इतनी बढ़ गई थी कि ये तथाकथित भक्त स्वयं को **'पापोऽहम् पापकर्मोऽहम् पापात्मा पापसम्भवः।'** जैसे हीनता बोधक सम्बोधनों से सम्बोधित करने लगे थे। तभी तो पुष्टिमार्गीय भक्त सूरदास ने स्वयं को 'सब पापियों का नायक' कह कर स्वयं की तुच्छता को ही विज्ञापित नहीं किया, अशेष जन समाज में हीनभावना को फैलाया । उनकी एक अन्य उक्ति थी- 'प्रभु हौं सब पति पतितन को टीको।'

वैदिकप्रार्थनाओं में ओजस्वता, तेजस्विता, गौरव तथा भक्त के आत्मा सम्मान का भाव सर्वत्र पाया जाता है। भक्त यह जानता है कि परमात्मा उसका पथदर्शक है, उसे सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा करने वाला है। वह उसका धाता, विधाता, अनुशास्ता तथा प्रबोधक है। उसकी प्रार्थना आकर्मण्यता तथा प्रमाद की जनक न होकर उत्साह, साहस, पुरुषार्थ तथा प्रफुल्लता की प्रेरक बनती है। आगे की पॅक्तियों में अथर्ववेद के मन्त्रों में वैदिक प्रार्थनाओं के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

ओज और तेज की प्रार्थना

दूसरे काण्ड के १७वें सूक्त में भक्त परमात्मा से ओज, तेज, बल, आयु, श्रवणशक्ति, दृष्टिशक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता है। उसका निवेदन है कि परमात्मा में उपर्युक्त शक्तियां पराकाष्ठा में हैं अतः ऐसे अनन्त बल सम्पन्न, महान् परमात्मा से इन शक्तियों की याचना करना उपयुक्त ही है। जिसके पास जो वस्तु होती है उसी से उसकी याचना की जाती है।

द्वेषभावना के त्याग के लिए प्रार्थना

देखा जाये तो मनुष्य दोषों एवं गुणों का समन्वित पुञ्ज है। यदि उसमें स्वयं की मौलिक उदात्त भावनाओं को जगाकर खुद को उन्नति पथगामी बनाने की सामर्थ्य है तो अपनी मानसिक दुर्बलताओं के वशवर्ती होकर पतन के मार्ग पर जाने से उसे रोकने वाला भी दूसरा कोई नहीं । ऐसी स्थिति में वह अन्यों के प्रति द्वेष भावना न रखे, इस विचार को वेदों में यत्र तत्र प्रमुखता दी है। दूसरे काण्ड के १९वें सूक्त के पांचों मन्त्रों में **'योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः'** इस उक्ति की आवृत्ति हुई है जो यह बताती है कि एक दूसरे के प्रति द्वेष भाव रखने तथा दूसरों का अनिष्टाचरण करने की प्रवृत्ति को हम परमात्मा को साक्षी बनाकर त्याग दें। यहां अग्नि परमात्मा की तप, हर, अर्चि, शोचि तथा तेज इन पांच शक्तियों का सन्दर्भ देकर कहा गया है कि हम में विद्यमान द्वेष बुद्धि का नाश तभी सम्भव है जब हम अग्निस्वरूप प्रभु की उक्त शक्तियों का निरन्तर चिन्तन करें।

ऐश्वर्यवान् (भगवान्) से प्रार्थना

तीसरे काण्ड का १६ वां सूक्त प्रातःकालीन ईश्वर प्रार्थना में दयानन्द सरस्वती द्वारा विनियूक्त किया गया है। महर्षि का आदेश है कि प्रत्येक आस्तिक पुरुष को ऊषा काल में शय्या त्याग कर संकेतित सूक्त के पांचों मन्त्रों का उच्चारण अर्थ चिन्तन पूर्वक करना चाहिए। इन मन्त्रों का देवता (प्रतिपाद्य) 'भग' संज्ञक परमात्मा है। 'प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे' (३।१६।१) इस प्रथम मन्त्र में परमात्मा को अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनौ, भग, पूषन्, ब्रह्मणस्पति, सोम तथा रुद्र नामों से सम्बोधित किया गया है तथा स्वकल्याणार्थ उनसे कृपा की यांचना की गई है।

वैदिक प्रार्थनाएं मनुष्य को धन ध्यान, बहुविध प्रजा-पशु आदि प्राप्त कराने के लिए की जाती हैं। दरिद्रता तथा लघुता वैदिक आर्य का आदर्श नहीं है। आलोच्य सूक्त का तीसरा मन्त्र भक्त को गौएँ, अश्व तथा वलसंयुक्त पुरुषार्थ, सन्तान प्रदान करने की बात करता है-

गोभिरश्वैर्भग प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम । उत्तम पशु तथा योग्य सन्तान संसारी मनुष्य की अभीष्ट वस्तुएं हैं।

भक्त की कामना और प्रार्थना है कि हमें प्रभुकृपा से यह ऐश्वर्यलाभ सतत, अनवरत, निर्विघ्न, सदा होता रहे। कोई ऐसा क्षण न आये जब हम ईश्वर की कृपा, दया तथा अनुकम्पा से वंचित रहें। इसी भाव का द्योतक यह मन्त्र है-

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रवित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ।।

३।१६।४

वर्तमान में, मध्याह्न में, सूर्योदय के समय सदा सर्वत्र हम ऐश्वर्यशाली रहें। साथ ही भक्त की प्रार्थना है कि हम विद्वज्जनों की सुमति में रहें ।

ध्यातव्य है कि वेदों में देवताओं की भद्रा सुमति (सद् बुद्धि) की सर्वत्र प्रशंसा तथा कामना की गई है। वैदिक बुद्धिवाद का उत्कर्ष हमें वहां दिखाई देता है जब हम वेदों में सर्वत्र बुद्धि की प्रशंसा पाते हैं। यह वह दिव्य सुमति है जो हमें प्रज्ञावान्, विचारशील तथा तर्कप्रणव बना कर पाखण्डों, कदाचारों तथा अन्धविश्वासों से मुक्ति दिलाती है। वैदिक प्रार्थना का सार सर्वस्व उस गायत्री मन्त्र में निहित है जहां सविता देव से उस भर्ग (तेज) की याचना की गई है जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर उन्मुख करता है।

पारस्परिक द्वेष का नाश

द्वेष को नष्ट करने की प्रार्थना के भाव के द्योतक एक सूक्त की चर्चा हम कर चूके हैं। तीसरे काण्ड का २७वां सूक्त 'यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म:।' इस टेक वाले छ: मन्त्रों का समूह है। स्वामी दयानन्द ने इस सूक्त को सन्ध्या के **'मनसा परित्र मा'** प्रकरण में विनियोजित किया है। वस्तुत: ईश्वर को सर्वव्याप्त, सर्वसाक्षी तथा सभी दिशाप्रदिशाओं में विद्यमान मान कर हम पाप रूपी दुष्कर्मों से बचे रह सकते हैं। परमात्मा किसी स्थान या देश विशेष में सीमित अथवा स्थानबद्ध नहीं है अपितु उसे सर्वत्र देखा तथा अनुभव किया जा सकता है। इसी अभिप्राय से आलोच्य सूक्त में प्राची, दक्षिणा, प्रतीचि, उदीचि, ध्रुवा तथा ऊर्ध्वा इन षड् दिशाओं में विद्यमान परमात्मा को क्रमश: अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु तथा बृहस्पति-इन छ: नामों से पुकारा गया है तथा सभी प्रकार की द्वेष बुद्धि को त्यागने तथा परमात्मा को विचारपति (न्यायाधीश) मान कर उनके निर्णय को सर्वात्मना स्वीकार करने की बात कही गई है।

चतुर्थ काण्ड का दूसरा सूक्त प्रजापति देवता को समर्पित है। आठ मन्त्रों के इस सूक्त में **'कस्मै देवाय हविषा विधेम'** की सूक्ति प्रत्येक मन्त्र की समाप्ति पर आती है। मन्त्रगत 'क:' प्रजापति का वाचक है किन्तु 'कस्मै देवाय' को पाश्चात्यों ने अनिश्चय का सूचक मान कर वैदिक ब्रह्मवाद पर आक्षेप किया और कहा कि वैदिक आर्य अपने आराध्य को लेकर निश्चियात्मक धारणा नहीं रखते थे। स्वामी दयानन्द ने और सायण ने भी 'क:' को प्रजापति परमात्मा का पर्याय बता कर इन मन्त्रों के विधेयात्मक अर्थ किये। स्वामी दयानन्द के मन्त्रार्थ का स्वारस्य इस बात में है कि उन्होंने 'हविषा' का अर्थ भिन्न-भिन्न मन्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से-किया है: 'हिरण्यगर्भ:' से आरम्भ होने वाले मन्त्र के 'हविषा विधेम' का अर्थ 'ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्त बताया' तो **'य: आत्मदा'** मन्त्रगत 'हविषा' का अर्थ 'आत्मा और अन्त:करण से भक्ति' अर्थात् उसी की आज्ञापालन में तत्पर रहना बताया **'य: प्राणतो'** मन्त्र में आये इस पद का अर्थ 'अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित कर विशेष भक्ति करना' कहा तो **'येन द्यौरुग्रा'** मन्त्र में आये 'हविषा' का अर्थ उन्होंने 'सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करना' बताया। स्वामी जी ने उक्त चार मन्त्र ईश्वर-स्तुति, प्रार्थनोपासना प्रकरण में रखे हैं। अवशिष्ट चार मन्त्र परमात्मा की सर्वग्रासी सत्ता तथा महत्ता का काव्ययुक्त शैली में उल्लेख करते हैं। वह परमात्मा ही है जिसकी महिमा से द्यौलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्षलोक अपना विस्तार पाते हैं। उसी की सत्ता और महिमा से सूर्य ने अपनी शक्ति का विस्तार किया है। (४।२।४) हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां, असीमित जलों के प्रवाह वाली नदियां तथा विस्तृत दिशाएं-ये सब परमात्मा की महिमा का ही गायन करते हैं-

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहु:।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

(४-२।५)

मेधा-याचना-

जैसा कि हम जानते हैं वेदों में मेधा रूपी उत्कृष्ट बुद्धि की याचना अनेक मन्त्रों में की गई है। वैदिक आर्य यदि किसी बात पर गर्व करते थे तोवह 'मेधा' संज्ञक बुद्धि ही थी जो उनके कण्टकाकीर्ण मार्ग को प्रशस्त करती थी तथा उनमें धर्माधर्म, सत्यासत्य, कर्त्तव्याकर्त्तप्य का विवेक जगाती थी। यह मेधा उनके मेधावी पूर्वजों तथा दिव्यकर्मा देवताओं को प्राप्त थी और साधक भक्त उसी की याचना अग्नि नाम वाले परमात्मा से करते थे। छठे काण्ड का १०८ वाँ सूक्त मेधा देवता का है। यहां तेजस्वी अग्नि संजयक परमात्मा से प्रार्थना है कि वे उसे अविलम्ब मेधावी बनायें-

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदु:।
तया मामद्या मेधायाग्ने मेधाविनं कृणु ।।६।१०८।४

सूक्तगात मन्त्र की भावना है कि इस मेधा से हम किसी भी क्षण वंचित न हों। प्रात: मध्याह्न तथा सायं-सदा हमें मेधा बुद्धि प्राप्त हो। सूर्य की किरणों की भांति हमें जगाने वाली तथा प्रेरणा देने वाली मेधा हमारी वाणी के साथ अभिन्न रहे-

मेधा सूर्यस्य रश्मिभिर्वर्चसा वेशयामहे ।।६।१०८।५

बुद्धि से विवेचित बोली गई वाणी मानव को सफलता दिलाती है। यही इस मन्त्र का भाव है।

वेदमाता से प्रार्थना

उन्नीसवें काण्ड का ७१वां सूक्त केवल एक मन्त्र का है। इसमें वरदायिनी वेदमाता का स्तवन किया गया है जो प्रेरणादायिनी तथा द्विज संज्ञक बुद्धिमान् जनों को पवित्र करने वाली है। इस वेदमाता की उपासना से उपासक को आयु, प्राण, प्रजा पशु, कीर्ति, द्रव्य तथा ब्रह्मवर्चस (ब्रह्म तेज, वेदाभ्यास से प्राप्त प्रतिभा) की प्राप्ति होती है) अन्तत: वह इस साधना के द्वारा ब्रह्म लोक (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। यह मन्त्र है-

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयु: प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।।

वामदेव गान

स्वामी दयानन्द सरस्वती का आदेश है कि किसी भी उत्तम कर्म (यज्ञ, संस्कार आदि) की समाप्ति पर महावामदेव्य गान अवश्य किया जाना चाहिए। वामदेव्य गान के तीन मन्त्र बीसवें काण्ड के १२४ वें सूक्त के आरम्भ में आये हैं। मन्त्रों का देवता इन्द्र है। इन मन्त्रों में परमात्मा को रक्षक मान कर उनसे विपत्तियों से रक्षा की प्रार्थना की गई है। स्वामी जी ने सामवेदोक्त वामदेव्य गान सामान्य प्रकरण के अन्त में दिया है।

चारों वेदों में प्रार्थनाओं का अनन्त विस्तार है। इनके अध्ययन तथा विवेचन से वैदिक उपासना का स्वरूप स्पष्ट होता है।

सुख–दु:ख की समस्या

पं. चमूपति एम. ए.

मस्तिष्क–सम्बन्धी विचित्रता

ऐनिड ओकलाहोमा (Enid Oklahoma) का बालक ऐनाबेल मॉरो (Annabel Morrow) बड़ा ही विचित्र बालक है। उसकी आयु अब ३ वर्ष की है। उसने इससे १८ महीने पहले पढ़ना आरम्भ कर दिया था और अब वह शरीर-विद्या, इतिहास और भूगोल के विषय में प्राय: सब-कुछ जानता है। वह लैटिन में गिनती करता है और रागी है। वह उन पुस्तकों को अनायास ही पढ़ लेता है जिन्हें चतुर्थ श्रेणी में पढ़ाया जाता है, और इससे भी अधिक यह कि वह अपने पढ़े हुए को अच्छी प्रकार से याद कर सकता है।

ऐसे ही लॉस ऐंजल्स हाई स्कूल में मॉरिस मर्फे (Maurice Murphy) नाम का ८ वर्ष का एक लड़का है। परीक्षा करने से पता लगा है कि उसकी मानसिक शक्ति २० वर्ष की आयु के मनुष्यों के बराबर है, अर्थात् इस अंश में यह मस्तिष्क-सम्बन्धी अद्‌भुत योग्यता रखनेवालों में से एक है। उसने बहुत समय पूर्व 'कान' द्वारा गायन किया था जो उसे किसी ने सिखाया नहीं था। उसको नक्षत्र-विद्या में बड़ा आनन्द आता है और उसका मन उस विषय को पहले से ही ग्रहण करता है जिन्हें कि कॉलेज के कई विद्यार्थी समझ भी नहीं सकते।

परीक्षक कहता है कि यह बालक एक विषय में ही नहीं किन्तु सभी विषयों में प्रवीण है। वह खेलने में भी वैसी ही चतुरता प्रदर्शित करता है जैसी कि कार्य में। वह अपने आसपास रहनेवाले सब लड़कों से दौड़ने, लड़ने, तैरने, डुबकी लगाने में अधिक चतुर है। इन सब बातों के होते हुए भी बालकों की भाँति वह चित्ताकर्षक भी है। वह अपने स्कूल में सर्व-प्रिय बालक है।

एवं, नैथेली क्रेन (Nathalie Crane) नाम का एक बालक है जिसकी आयु अभी ११ वर्ष की भी नहीं, किन्तु उसकी कविताओं का प्रथम भाग प्रकाशित हो रहा है। Wonderchild नामक साम्मुख्य का विजेता ऐलबर्ट जे. हॉयत (Albert J. Hoyt) नाम का ७ वर्षे का बालक है। यह अपने ही ढंग का विचित्र-सा बालक है। इसने पक्षियों के विषय में एक पुस्तक लिखी है जिसका चित्रकार भी वह स्वयं ही है। इसने कई अन्य कथाएँ और कविताएँ भी लिखी हैं। यह बालक इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, नक्षत्र-विद्या और साहित्य में अतिप्रवीण है- यह अपनी स्मृति-शक्ति द्वारा ही सब जातियों के झण्डों का चित्र खेंच सकता है।- रात्रि के आकाश से वह ऐसा परिचित है जैसे अपने बाग से। वह बिना किसी कष्ट के अपने टैलिस्कोप से जहाँ चाहे वहाँ नक्षत्रों को देख सकता है। इसके अतिरिक्त वह खेलने, कूदने, दौड़ने में भी बहुत प्रविण है।

प्रचारक बालक

परन्तु इन सबसे बढ़कर जो सबको आश्चर्य में डालते हैं वे प्रचारक बालक हैं।

न्यूटन हेस्टिंग्स (Newton Hastings) नामक एक सात वर्ष का बालक है जो अपने प्रचार द्वारा मनुष्यों को स्तम्भित और चकित कर देता है। वह अपने निवास-स्थान सलसबरी से सारे राज्य में भ्रमण करता है और जब भी यह विज्ञापन दे दिया जाता है कि उसका उपदेश होगा तो गिरजा अवश्य भर जाता है। उससे हाथ मिलाने की प्रतीक्षा में लोगों की भीड़ बाहर खड़ी रहती है। वह स्कूल की द्वितीय श्रेणी में है और अभी लिखना-पढ़ना सीखने लगा है, इसलिए अपने उपदेशों को वह तैयार नहीं कर सकता। उसका बाप उन सुधरे हुए मनुष्यों में से एक है जिन पर उसके उपदेशों का प्रभाव पड़ा है। जब उसने अपने पुत्र की प्रतिभा-शक्ति को देखा तो वह गिरजे में भर्ती हो गया और अब श्रद्धा से वहाँ सेवा करता है।

दु:खवाद

हमने पहले निर्देश किया है कि ऐहिक सुख में भी दु:ख की लाग पाई जाती है। निराशावादी इस सिद्धान्त को अति कि सीमा तक ले जाते हैं। कुछ समय से बौद्ध धर्म के विषय में यह कल्पना प्रचलित थी कि यह धर्म-निरपेक्ष दु:खवादी है, इसका ध्येय अभाव की प्राप्ति है। वर्तमान खोज, ने इस धारणा को निर्मूल कर दिया है। आत्म-हत्या ऐहिक दु:खों का एकमात्र उपाय है- यह प्रस्तावं प्रसिद्ध जर्मन विचारक शोपन हावर का है। परन्तु उसने स्वयं आत्म-हत्या नहीं की, किन्तु समय आने पर ही मरा। यह उसके मत का उसने अपने जीवन से प्रत्यक्ष खण्डन है।

वेद ने आत्महत्यारे को महापापी कहा है-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता:।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जना :।।

- यजु. ४०।३

घोर अन्धकार से धिरी हुई अदैव अवस्थाएँ ऐसी हैं जहाँ आत्महत्यारे मरकर भी जाते हैं।

संयम:

यदि मर जाना अभाव को प्राप्त हो जाना होता तो शोपन हावर के कथन में कुछ सत्य की मात्रा होती। अभाव की अवस्था में सुख न सही, दु:ख भी तो न होता। परन्तु यह तो आत्म-सत्ता ही बता रही है कि मरने पर आत्मा नहीं मर जाता। शोपन हावर को उसका अन्तरात्मा बता रहा था कि तू अमर है। तभी तो उसने आत्म-हत्या नहीं की। आत्म-हत्या भीरुओं का मार्ग है और भीरुता स्वयं दु:ख है।

ऐहिक सुख, जिस प्रकार साधारण जनता उसे भोगती है, दु:ख से शून्य नहीं। इसकी भंगुरता दु:ख है। ऐन्द्रिय-सुख को स्थिर रखने का कोई साधन नहीं। खाते जाओ, पीते जाओ, कोई भोग निरन्तर भोगते जाओ, वही स्वयं रोग बन जाता है। भोग का आनन्द कभी-कभी लिया जा सकता है, निरन्तर नहीं। सुख कभी-कभी में है अर्थात् संयमपूर्वक भोगने में। संयम इन्द्रिय-जन्य नहीं, आत्म-जन्य है। यह तो हुई संसार के भोगों की अवस्था कि वे भी बिना वशीकार के वश में नहीं आते। फिर आत्मरति का तो कहना ही क्या है ! सुकरात को विष के प्याले से ग्लानि नहीं होती। प्रभु ईसा सूली पर परमात्मा की इच्छा की पूर्ति चाहते हैं। दयानन्द फफोलों-भरे शरीर में प्रसन्नवदन रहते है और जब इस भोग की समाप्ति होती है तो वही महात्मा ईसा के शब्द दोहरा देते हैं। कारण क्या है? इन्हें दु:ख का होना तो प्रत्यक्ष है,

परन्तु उसका भान नहीं। संसारी लोग गम गलत करने को मादक द्रव्यों का आश्रय लेते हैं। कुछ समय के लिए इनसे मस्ती आ जाती है; परन्तु उस मस्ती का उतार कठोर यातना होता है। आत्मज्ञानी 'नाम खुमारी' में मस्त रहता है। उसके अन्तर्हृदय में बोध उत्पन्न हो जाता है कि मैं शरीर नहीं। सांसारिक द्वन्द्व 'मात्रास्पर्श' देह-मात्र को छू जाने वाले हैं।

इन्द्रोयेन्दी परिस्त्रव । - ऋ. ९।११४।१

इन्द्रियों के अधिपति के लिए आत्म-ज्ञान की गंगा बहती है।

जीवन्मुक्त :

योगी संसार के कार्य से विमुख नहीं होता । आपत्तियों में आता है, झंझटों में पड़ता है, क्योंकि यह तो देह-धर्म है। शरीर-यात्रा में कर्म करना आवश्यक है। साधारण जनों में और योगी महात्मा में भेद यह होता है कि भोगी केवल इन्द्रियों के ही सुख-दु:ख का अनुभव करते हैं जो चिरस्थायी नहीं, और योगी को स्थिर सुख की निरन्तर अनुभूति होती रहती है। उस अनुभूति का प्रभाव इतना होता है कि ऐहिक सुख-दु:खों का उसमें लोप हो जाता है। ऐहिक सुखों में भी सुखपना उती योग के साधन 'संयम' से आता है। **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:।** (यजु.४०।१।)

यह त्याग अर्थात् आत्म-वशीकार का भाव अध्यात्म-जगत् की उपज है, अनात्मा की नहीं।

वेद ने आत्म-हत्या को पाप और उसका परिणाम राक्षसी भाव ठहराकर दु:ख से बचने का उपाय बताया है- **ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युपाघ्नत।** (अ.) ब्रह्मचर्य के तप से देव-स्वभाव मनुष्यों ने मृत्यु का हनन कर दिया है।

यही सुख-दु:ख की समस्या का समाधान है। जब जीते-जी मनुष्य इस प्रकार मृत्यु को मार लेता है तो मरने पर उसका अमृत होना स्वाभाविक हो जाता है। **य इन्दो: पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत्। तमाहु: सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्त्रव ।।** -ऋ. ९।११४।१

जिसने पवित्र करनेवाले आत्म-ज्ञान के साधनों का अनुष्ठान किया, आत्मरति ! जिसने मन को तेरे अर्पण किया, उसका जन्म सफल हुआ । हे आत्मसुख की गंगा ! उस आत्मवशीकर्ता के चारों और बह।

सार

वास्तविक सत्ता :

मानसिक चिकित्सावाद वालों का मत है कि दु:ख की कोई सत्ता नहीं। केवल अपने भ्रम से मनुष्य दु:ख की सृष्टि करते हैं। निराशावादी संसार को दु:ख-ही-दु:ख का हेतु मानते हैं। यह दोनों की भूल है। तर्क भ्रम-मात्र सत्ता को भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता । दु:खवादी शोपन हावर को आत्म-हत्या का साहस नहीं हुआ। उसका जीवन उसके मत का खण्डन था।

तार तम्य :

लोगों की आयु समान नहीं, सन्तति समान नहीं, सम्पत्ति समान नहीं, स्वास्थ्य में भेद है, मानसिक योग्यताओं का भेद है। यह भी नहीं कि एक अङ्ग की कमी दूसरे अङ्ग की अधिकता से पूरी हो जाए। व्यक्तियों के भोग में वस्तुत: तार तम्य है। यही तारतम्य सुख-दु:ख की पहेली है।

कर्म का फल :

यह तार तम्य कहाँ से आता है? प्रकृतिवादी कह सकता है- परिस्थिति-भेद से। परन्तु परिस्थिति-भेद क्यों होता है? आत्मवादी आत्मा को प्रकृति का खिलौना नहीं बना सकता । परमात्मा की इच्छा-मात्र को इस तारतम्य का कारण मानना परमात्मा को या पक्षपाती मानना है या केवल तरंगी, और यह किसी धर्मवादी को अभीष्ट नहीं । धीर पुरुष अपने सुख-दु:ख का उत्तरदातृत्व अपने ही ऊपर डालेंगे, अर्थात् इसे जीव के कर्मों का फल ही ठहराएँगे। वेद आत्मा को **स्वधया गृभीत:** (ऋ. १।१६४।३९) कहता है, अर्थात् जीव स्वतन्त्रता से ही बन्धन में पड़ता है।

पुनर्जन्म :

कुछ भोग ऐसे हैं जो जन्म के साथ आते हैं जैसे वंशज स्वभाव, वंशज स्वास्थ्य, वंशज सम्पत्ति आदि। ये इस जीवन के कर्म के फल नहीं, न ही इस जीवन के सभी कर्म इसी जीवन में फलित हो जाते हैं। यदि ऐसे भोगों और कर्मों को आकस्मिक मान लिया जाए तो पुरुषार्थबाद के लिए कोई यौक्तिक आधार नहीं रहता। जीवनों की एक श्रृंखला प्रतीत होती है, जो अनादिकाल से चली आती है और अनन्तकाल तक चलती जाएगी।

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निऋतिमा विवेश ।

-ऋ. १।१६४।३२

वह माता के गर्भ में लिफ्टा हुआ बहुत जन्म धारण करता और भोग को प्राप्त होता है।

पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाण वे चमत्कारी बालक हैं जो छोटी आयु में गान, कविता तथा उपदेश आदि का कार्य निपुणता से कर सकते हैं। इनसे भी अधिक स्पष्ट और अकाट्य साक्षी उन बालकों की है जो अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त सुनाते हैं, और जब उनके निर्देशानुसार उन्हें अपने पूर्व-जीवन के निवास-स्थान में ले-जाकर पूछताछ की जाती है तो उनका वृत्तान्त प्राय: सत्य सिद्ध है। ऐसे उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं।

जीवन्मुक्ति:

इन सुख-दु:खों के सत्य होते हुए भी आध्यात्मिक आनन्द का रस इतना प्रबल है कि यदि वह प्राप्त हो जाए तो भौतिक सुख-दु:ख का उस आनन्द में लोप हो जाता है। भौतिक आनन्द भी संयमपूर्वक ही भोगे जा सकते हैं, अन्यथा वे स्वयं रोग बन जाते हैं; और यह संयम अध्यात्म-पक्ष की चीज है-**तेन त्यक्तेन भुंजीथा : ।** (४०।१) इसलिये त्यागपूर्वक भोग कर।

वही संयम आत्मवशीकार है । इसी के अभ्यास से मनुष्य आत्मरति को प्राप्त करता है जिससे मुक्ति होती है।

इन्द्रायेन्दो परिस्त्रव ।

हे अमर सुख की गंगा ! संयमी के चारों ओर बह । यही जीवन की सफलता है।

वेद की आज्ञा स्पष्ट है-

य इन्दो: पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत्।
तमाहु: सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्त्रव ।

- ऋ. ९।११४।१

जिसने पवित्र करनेवाली आत्मरति के साधनों का अनुष्ठान किया, जिसने अपना मन इस आत्मरति के अर्पण किया, उसे सफल-जन्म कहते हैं। उस आत्मवशीकारी के चारों ओर अक्षय आनन्द की गंगा बहती है।

चाणक्य नीति दर्पण

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

किसी ने मूर्ख के पाँच चिह्नों में 'दूसरे की बात को न मानने' का भी उल्लेख किया है-

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वो दुर्दचनं तथा।
हठश्चैव विषादश्य परोक्तं नैव मन्यते ।।

मुर्ख मनुष्य के पांच चिह्न होते हैं यथा- (१) अभिमानी होना (२) कुटु-कठोर बोलना, गाली प्रदान करना, (३) हठी, अडियल होना, (४) दु:खी होना और (५) दूसरे की कही हूई बात को न मानना।

दुष्टस्त्री-व्यभिचारिणी नारी का भरण-पोषण भी ठीक नहीं-

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तप्य यथारण्यं तथा गृहम् ।।

- पञ्चतन्त्र ४।५३

जिसके घर में माता न हो और स्त्री अप्रियवादिनी=दुराचारिणी हो, उसे वन में चले जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए घर और बन समान ही है।

दु:खितों, रोगियों, पीड़ितों, शोक-सन्तप्तों के साथ व्यवहार होने से भी कष्ट तो होगा ही। वैद्य **'परदु:खेन दु:स्थते'** दूसरे के दु:ख से दु:खी होता है, अत: दु:खियों के साथ व्यवहार रखने से पण्डित भी दु:खी होगा।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं मृत्यश्चोत्तरवायक: ।
ससपें च गृहे वासो मृत्युरेव न संशय: ।।५।।

शब्दार्थ–दुष्टा कटु बोलनेवाली और दुराचारिणी **भार्या स्त्री,** पत्नी **शठम्** धूर्त **मित्रम्** मित्र च तथा **उत्तरवायक:** उत्तर देनेवाला, सामने बोलनेवाला **भृत्य:** नौकर **च** और **ससपें** जहां साँप रहता हो ऐसे, सर्पवाले **गृहे घर में वास:** निवास-**ये बातें मृत्यु:** मौत, मृत्यु के समान **एव ही हैं संशय:** न इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं है।

भावार्य- कटुभाषिणी और दुराचारिणी स्त्री, धूर्त स्वभाववाला मित्र, उत्तर देनेवाला नौकर और सर्पवाले घर में रहना- ये सब बातें मृत्युस्वरूप ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

विमर्श दुष्टा नारी का चित्रण देखिए-

आ: पाकं न करोषि पापिनि कथं पापी त्वदीय: पिता,
रण्डे जल्पसि किं तवैव जननी रण्डा त्वदीया स्वसा ।
निर्गच्छ त्वरितं गृहाद् बहिदितो नेवं त्वदीयं गृहम्,
हा ! हा ! नाथ ! ममाध देहि मरणं जारस्य भाग्योदय: ।।

भूख से व्याकुल कोई पति घर पहुंचने पर भोजन करना चाहता है, परन्तु घर में भोजन तैयार नहीं है, अत: वह क्रोधावेश में पत्नी से कहता है-

''रे पापिनि ! अबतक भोजन क्यों नहीं नहीं बनाया?' पत्नी उत्तर देती है- ''मैं पापिनी क्यों हैं, पापी होगा तुम्हारा पिता।'' पति पुन: कुद्ध होकर कहता है- ''अरी राँड ! क्यों अधिक बकवास करती है?'' पत्नी उत्तर देती है- ''मैं क्यों रॉड हूँ। राँड होगी तेरी माँ, तेरी बहिन।'' पति पुन: कुपित होकर कहता है- ''मेरे घर से शीघ्र बाहर निकल जा।'' पत्नी उत्तर देती है- ''हा नाथ ! हा नाथ मेरा आज ही मरण हो जाए तो अच्छा है, क्योंकि घर में कुलटा का भाग्योदय हुआ है।''

ऐसी कुलटा सचमुच मृत्यु ही है।

धूर्त मित्र- धूर्त किसे कहते हैं

मुखं पद्यदलाकारं वाचा चन्दनशीतला ।
हृदयं क्रोधसंयुक्त त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ।।

जिसका मुख कमल के समान प्रसन्न हो, जिसकी वाणी चन्दन के समान शीतल हो तथा जिसका हृदय क्रोध से युक्त हो - इस त्रिपुटी से युक्त होना धूर्त का लक्षण है।

'जो चोर से कहे चोरी कर ले और शाह से कहे जागते रहना'

ऐसा धूर्त भी मृत्युरूप ही है। धूर्त कहीं भी धोखा देकर मित्र के लिए मृत्यु का कारण बन सकता है।

उत्तर देनेवाला नौकर भी मृत्युरूप ही हैं। जहा छोटा बड़ों का अपमान करे वहाँ बड़ों की मृत्यु ही हैं।

साँपवाले घर में रहने में तो मृत्यु में सन्देह है ही नहीं।

आपदर्थे धनं रक्षेद्ध दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ।।६।।

शब्दार्थ– आपदर्थे आपत्तिकाल के लिए **धनम्** धन की **रक्षेत्** रक्षा करे **धनै:** धन से **अपि** अधिक **दारान्** स्त्री की **रक्षेत्** रक्षा करे और सततम् सर्दा दारै: अपि स्त्री से भी तथा धनै: अपि धन से भी अधिक आत्मनम् अपने आत्मा की, अपनी रक्षेत् रक्षा करनी चाहिए।

भावार्थ- बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि आपत्तिकाल के लिए धन का संग्रह और उसकी रक्षा करे। धन से भी अधिक पत्नी की रक्षा करनी चाहिए। परन्तु धन और स्त्री से भी अधिक अपनी रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि अपना ही नाश हो जाने पर धन और स्त्री का क्या प्रयोजन?

विमर्श– इस विषय में विदुरजी ने भी ठीक ही कहा है–

त्यजेत् कुलार्थ पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।।

- महा. उद्यो. ३७।१७

कुल की रक्षा के लिए एक पुरुष का बलिदान कर देना चाहिए, ग्राम की रक्षा के लिए कुल को त्याग देना चाहिए, जनपद (जिले) के लिए ग्राम को छोड़ देना चाहिए और आत्मरक्षा के लिए सारी पृथिवी को छोड़ देना चाहिए।

आपदर्थे धनं रक्षेच्छीमतां कुत आपद:।
कदाचिच्चलते लक्ष्मी: सञ्चितोऽपि विनश्यति ।।७।।

शब्दार्थ-आपत्+अर्थे आपत्ति काल के लिए विपत्ति-निवारणार्थ **धनम्** धन की **रक्षेत्** रक्षा करनी चाहिए, **श्रीमताम्** श्रीमानों, धनवानों, वैभवशालियों पर **आपद:** आपत्तियाँ **कुत:** कब आती हैं? **कदाचित**

कभी दैवयोग से **लक्ष्मी:** सम्पत्ति, धन, वैभव, **चलते** चला जाता है, यदि ऐसी बात है तो सञ्चित: **सच्चित:** सञ्चित, जोड़ा हुआ धन **अपि** भी विनश्यति नष्ट हो जाता है।

भावार्थ - किसी ने किसी धनी से कहा - ''आपत्तिकाल के लिए धन का संग्रह करना चाहिए।'' धनी बोला- ''श्रीमानों पर आपत्तियाँ कब आती हैं?'' वह मनुष्य बोला- ''लक्ष्मी चञ्चल है, हो सकता है कभी चली जाए।'' धनी बोला-'' ऐसी बात है तो सञ्चित की हुई सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती है।''

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवा: ।
न च विद्याऽऽगम: कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ।।९।।

शब्दार्थ- यस्मिन् जिस देश देश में सम्मान: आदर सम्मान नहीं है न न वृत्ति: आजीविका है च और न न **बान्धवा:** भाई-बन्धु हैं च तथा कश्चित् किसी विद्या+आगम: विद्या की प्राप्ति भी न नहीं है **तम्** उस **देशम्** देश को **परिवर्जयेत्** त्याग देना चाहिए।

भावार्थ- जिस देश में न तो आदर-सम्मान है, न आजीविका-प्राप्ति के साधन हैं, न बन्धु - बान्धव है और न ही किसी विद्या की प्राप्ति की सम्भावना है, ऐसे देश को छोड़ देना चाहिए, ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिए।

धनिक: श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चम:।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ।।६।।

शब्दार्थ– धनिक: धनवान् **श्रोत्रिय:** वेदज्ञ ब्राह्मण राजा धार्मिक और न्यायशील राजा, **नदी** कृषि की सिंचाई के लिए नदी तु और **पञ्चम:** पाँचवाँ **वैद्य: वैद्य–यत्र** जहाँ ये पञ्च पाँच न **विद्यन्ते** विद्यमान न हों **तत्र वहाँ,** उस स्थान पर **दिवसम्** एक दिन भी न नहीं **वसेत्** रहना चाहिए।

भावार्थ- जहाँ धनवान्, वेदज्ञ ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य- ये पाँच विद्यमान न हों, ऐसे देश या स्थान में नहीं रहना चाहिए।

विमर्श– धनिक:– समय पड़ने पर ऋण देने या लेने के लिए धनिक का होना आवश्यक है।

श्रोत्रिय: – उपदेश देकर लोगों को सन्मार्ग पर चलाने के लिए श्रोत्रिय= वेदज्ञ ब्राह्मण होना चाहिए।·बौधायन गृह्यसूत्र में श्रोत्रिय की परिभाषा के लिए निम्न सूत्रों को देखें

ब्राह्मणेन ब्राह्मण्यामुत्पन्न: प्रागुपनयनाज्जात इत्यभिधीयते ।।

ब्राह्मण से ब्राह्मणी में उत्पन्न बालक उपनयन से पूर्व 'जात' कहलाता है।

उपनीतमात्रो व्रतानुचारी वेदानां किञ्चिदधीत्य ब्राह्मण:।।

ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन करनेवाला यज्ञोपवीतधारी कुछ वेद पढ़कर ब्राह्मण होता है।

एकां शाखामधीत्य श्रोत्रिय: ।।

वेद की एक शाखा का अध्ययन करके 'श्रोत्रिय' होता है।

❖❖❖

विचार शक्ति का चमत्कार

(त्याग पूर्वक प्राप्त करने की विद्या)

प्रिय पाठकों,

यह बात विरोधाभास प्रतीत होती है कि त्याग भी करना है और प्राप्त भी करना है। इसका सीधा अर्थ है कि प्राप्य या साध्य वस्तु में लिप्त न रहते हुए या आसक्त न रहते हुए उसे प्राप्त करना। यह बहुत ही शक्तिशाली विद्या है जिसमें हमे अपने विचारों पर पूर्ण नियंत्रण रखना होता है। इसे अलगाव की विद्या भी कह सकते हैं। तेन त्यक्तेन भुंजिथा के आधार पर इस संसार का त्याग पूर्वक उपभोग करना है या फल को प्राप्त करना है यानि इसमें आसक्त न रहना है। हमें सांसारिक वस्तुओं से या व्यक्तियों से अलगाव रखना है लेकिन उन्हें समझते हुए बिना स्वं से दूर भागे या स्वं की उपेक्षा किये। जब भी हम किसी वस्तु को बहुत ही गंभीरता से प्राप्त करना चाहते हैं जैसे अच्छा व्यवसाय करना या अच्छी नौकरी प्राप्त करना लेकिन वह प्राप्त नहीं हो पा रही, भरसक कोशिशों के बावजूद तब हमारे अंदर असंतोष या चिड़चिड़ापन व्याप्त हो जाता है। तब हमारे अंदर भावना जागती है कि मुझे नहीं चाहिए एसी नौकरी या एसा व्यवसाय, उन्हे प्राप्त करने की इच्छा को थोड़े समय के लिए अपने दिमाग एक तरफ रखकर यदि हमने वास्तव में उस इच्छा का त्याग नहीं किया बल्कि अपने आपे थोड़े समय के लिए खाली कर दिया। एसा करते ही, जैसे हवा उँचे हवामान से निचले दबाव की ओर दौड़ती है हमारी इच्छित वस्तु इस प्रकृति से हमारी ओर आकर्षित होने लगती है। जाने अनजाने में और प्रत्य: हम ज्यातर परिस्थितियों मे प्राप्त भी कर लेते हैं। प्रिय पाठकों यह बहुत ही जटील विषय को समझने में मुझे वर्षो लग गए और इसका व्यवहारिक रूप सरल से सरल शब्दो में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हम सभी जाने अनजाने में इसका प्रयोग करते हैं। लेकिन यदि दिन में कुछ क्षण हम इच्छा पूर्वक इस विद्या का अभ्यास करे तो हमारे सफल होने की संभावना बढ़ सक्ती है इसका विस्तारित रुप अगले अंक में धन्यवाद!

–राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
उपप्रधान, आर्य समाज, वाशी.

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी भारत की राजनीति में कैसे व्यक्तियों का नेतृत्व चाहते थे

आज भारतवर्ष की सबसे बडी समस्या है कुशल नेतृत्व

पं. उम्मेद सिंह विशारद
मो.: ९४११५१२०१९ / ९५५७६४१८००

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी भारत वर्ष में अखण्ड राज्य व राजधर्म वेदानुकूल व मनुस्मृतिनुसार धार्मिक सामाजिक व उच्च राजनैतिक नेतृत्व चाहते थे इसी लिये उन्होने जब महाराजा उदयपुर के स्थान पर भाद्रपद शुक्लपक्ष संवत १९३९ में अपना क्रान्तीकारी अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का लेखन शुभारम्भ किया और उसमे एक विषय छठा सम्मुलास राजधर्म व राज्य नेतृत्व कैसा हो इस पर लिखा है

सदियों की गुलामी के बाद जो भारत को स्वतन्त्रता मिली थी और भारत का नेतृत्व भारतीयों के हाथ मे आ गया था, और भारत का संविधान बना था वह वेदानुकूल वैदिक विद्वानों के नेतृत्व में प्रथम भारत वर्ष की सरकार बनती तो आज भारत में जो सबसे बड़ी भ्रष्ट राजनेतृत्व की गम्भीर समस्या बनी हुई है, और चाहकर भी उच्च विचारों वाले विद्वान विवश होकर मूक दर्शक बने हुए है, उनका आत्मिक श्राप भारत की राजनीति को खाये जा रहा है।

नोट : इस लेख मे महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश के छठे सम्मुलास मे राजा व सभासदो का चरित्र का उल्लेख किया है, हम वर्तमान संविधान के अनुसार राष्ट्रपति व प्रधान मंत्री, व मुख्य मंत्रियो को राजा व विधायको को सभासद मान कर लेख मे संकेत कर रहे है।

ऋणि राजन विद थे पुरुणि परि विश्वानि भूषथ: संदासि ।
(श्र.स.प्र.)

ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिल के सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा (नेता) और प्रजा के सम्बन्धरूप व्यवहार मे तीन सभा अर्थात विद्यार्प्यसभा, धर्मार्व्यसभा, राजार्य्यसभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या स्वातन्त्रय, धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

नोट: भारत का धर्म ग्रन्थ वेद है, और भारत मे प्रचलित अनेक मत धर्म होते हुए भी वेदसर्वमान्य है। भारत को स्वस्थ नेतृत्व हेतु न्यायकारी, सदाचारी, निस्वार्थी पुरूषार्थी ईमानदार नेताओ की कमी पूरी करने के लिये प्रत्येक जिले मे एक पृथक राजनीति कॉलेजो की स्थापना की जाए, जिसमे पाठ्यक्रम केवल वेदानुसार राजनीतिज्ञ विषय हो और प्रवेश की शर्त संस्कृत व अंग्रेजी से इन्टर, बी.ए. या एम.ऐ. हो और आयु. सीमा २५ वर्ष से ४० वर्ष तक की हो और २ वर्ष का पाठ्यक्रम हो, तथा उन राजनीति कॉलेजो से उत्तीर्ण विद्यार्थियों को ही चुनाव लडने का अधिका दिया जाए तो भविष्य मे भारतवर्ष में राजनीति मे आमूल परिवर्तन आ सकता है।

स्थिरा व: सन्त्वायुद्या पराणुदे वीलू उत प्रतिष्कमे–।
(ऋ.स.प्र.)

अथार्त: महाविद्वानो को विद्यासभा अधिकारी, धार्मिक विद्वानो को धर्मसभा अधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरषो को राजसभा के सभासद और जो उन सब मे सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त, महान पुरुषो हो उसको राजसभा का प्रतिरुप मान के सब प्रकार से उन्नति करें । तीनो सभाओ की सम्पति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमो के आधीन सब लोग वर्ते, सब के हितकारक कामो मे सम्मति करें। सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कार्यो मे अर्थात जो-जो जिनके काम है उन-उन मे स्वतन्त्र रहें।

इन्द्रा–२ निलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्यच–। (मनु सत्यार्थ प्रकाश)

अर्थात: वह समेश राजा इन्द्र अर्थात विद्युत के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्ता वायु के समान सब के प्राणवत प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा यमपक्ष्पातरहित न्यायधीश के समान वर्तनेवाला सूर्य के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक अन्धकार अर्थात अविद्या, अन्याय का निरोधक: अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला वरुण अर्थात बांधनेवाले के सदृश्य दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधनेवाला चन्द्र के तुल्य श्रेष्ट पुरषों को आनन्ददाता धनाध्यक्ष के समान कोषो को पूर्ण करने वाला सभापति होवे।

सत्यार्थ प्रकाश के राजधर्म विषयक मे सभापति के गुण कैसे होने चाहिए।

- वही प्रजा का शासनकर्ता सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसी लिये बुद्धिमान लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं
- जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दि कर देता है और जो बिना विचार चलाया जाय तो सब ओर से प्रजा का विनाश कर देता है।
- जो उस दण्ड को चलाने वाला सत्यवादी विचार के करने हारा,

बुद्धिमान धर्म-अर्थ और काम के सिद्ध करने से पण्डित राजा है, उसी को दण्ड का चलाने हारा विद्वान लोग कहते है।

- जो आप्त पुरषों के सहाय विद्या, सुशिक्षा से रहित विषयो मे आसक्त मूढ है, वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नही हो सकता।
- जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरूषों का संगी यथावत नीतिशास्त्र के अनुकूल चलाने हारा श्रेष्ठ पुरषो के सहाय से युक्त बुद्धिमान है वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने मे समर्थ होता है।
- सब सेना और सेनापतियो के ऊपर राज्यधिकारी दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यो का अद्यिपात्य और सबके ऊपर वर्तमान सर्वाधीश राज्यधिकार इन चारो अधिकारो में सम्पूर्ण वेद शास्त्रो मे प्रवीण पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितन्द्रिय सुशील जनो को स्थापित करना चाहिये अर्थात मुख्य सेनापति मुख्य राज्यधिकारी, मुख्य न्यायधीश प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान होने चाहिए।
- इसलिये तीनो अर्थात विद्यासभा, धर्मसभा, और राज्यसभाओ मे मूर्खो को कभी भरती न करे। किन्तु सदा विद्वान और धार्मिक पुरूषों का स्थापन करें।
- राजा और राजसभा के सभासद तब हो सकते हैं जब वे चारो वेदो की कर्मोपासना ज्ञान विद्याओं के जानने वालों से तीनो विद्या सनातन दण्ड नीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या, अर्थात परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव रुप को यथावित जानने रुप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओ का आरम्भ (कहना और पूछना) सीख कर सभासद व सभापति हो सकें।
- इस से सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राजक्रमो मे कुशल विद्वान मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता किसी से (विग्रह) विरोध (स्थान) स्थिति समय को देखकर चुपचाप रहना अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना (समुदायम) जब अपना उदय अर्थात वृद्धि हों तब दुष्ट शत्रु पर चढाई करना (गुप्तिम) मूल कोश आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो-जो देश प्राप्त हो उस-उस मे शान्तिस्थापना उपद्रवरहित करना इन छः गुणो का विचार नित्यप्रति किया करें।
- विचार से करना कि उस सभासदो का प्रथम्-प्रथम अपना-अपना विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों मे जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना।
- राज्यकार्यों मे विविध प्रकार के विद्वान अध्यक्षो का सभा नियम करे इनका यही काम है जितने जितने जिस काम मे राजपुरुष हो वे नियमानुसार वर्त कर यथावत काम करते है या नही, जो यथावत करे तो उनका सत्कार और जो विरोध करें तो उन को यथावत दण्ड दिया करें। सदा जो राजाओ का वेद प्रचार रूप अक्षय कोष है उसके प्रचार के लिये जो कोई यथावत ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों को पढकर गुरूकूल से आवें उसका सत्कार राजा और सभा यथावत करे तथा उन सबका भी जिनके पढाये हुए विद्वान होवे इस बात करने से राज्य मे विद्या की उन्नति होती है।

आत्म निवेदन

ये थोडे से सांकेतिक रूप मे नेतृत्व करने वाले सभासद का चरित्र कैसा होना चाहिये प्रस्तुत किये है, विस्तार के लिये सत्यार्थ प्रकाश का छठंवा सम्मुलास पढिये।

क्या? आर्य समाज ही देश को वेदानुकूल कुशल नेतृत्व दे सकता है। जी हां पर कैसे?

- आर्य समाज धार्मिक संगठन के अतिरिक्त राष्ट्रीय उत्थान संगठन भी है। और इतिहास प्रमाण है आर्य अनुयायियों ने राष्ट्र हित हेतु सर्वाधिक अपने प्राणों की आहूतियां दी थी।
- आज आर्य समाज को जागना होगा, और अपने मूल लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा हम आगे कैसे बढे इस पर विचार करते है।
- अविलम्ब आर्य नेतृत्वो को अपनी महत्वकाक्षाऐं और दम्भ को छोडना पडेगा करके आयर्यजगत को एक सर्व मान्य सर्वदेशिक सभा को गठन करना होगा।
- आर्य जगत के राज्यो मे जो दो-दो प्रतिनिधि सभा चल रही है सभी को भंग करके एक-एक प्रतिनिधि सभा बनानी होगी।
- आर्यजगत के जो न्यायलयों मे मुकदमे चल रहे है वह सभी समाप्त करने होंगे।
- आगमी २०१९ के लोक सभा के चुनावो मे सभी गुरुकुलो से छांट कर विद्वान स्नातको को समस्त आर्य जगत सहयोग से चुनाव मैदान मे अपने आर्य नेतृत्वो के माध्यम से चुनाव लडाऐ।
- भारत सरकार से मांग करे कि प्रत्येक प्रान्त मे राजनीति कॉलेजो की स्थापना की जावे और उसमे प्रवेश की गुणवत्ता इन्टर से एम.ए. तक उर्त्तीण अभयार्थी की हो, आयु २५ से ४० वर्ष तक हो! और केवल भविष्य मे केवल उन्ही को सरकार चुनाव टिकट दे जो राजनैतिक कॉलेजो से उत्तीर्ण हो। सारा आर्य जगत एक स्वर मे मांग करे कि गुरूकुलो के सनातको को प्राथमिकता दी जावे। यदि ऐसा हो जाये तो कालान्तर मे आर्य समाज कुशल भारत को नेतृत्व देने के लिये मील का पत्थर होगा। और महर्षिदयानन्द जी का स्वप्न पूरा होगा।

गढ़ निवास मोहकमपुर, देहारादून उत्तराखण्ड।

जड़ोपासना श्रेयस्कर नहीं

डॉ. भवानीलाल भारतीय

गर्ग गोत्र में उत्पन दृप्तबालाकि नामक एक पुरुष था। एक दिन वह काशी के राजा अजातशत्रु। के समीप गया और उससे बोला- ''मैं तुम्हें ब्रह्म का उपदेश करूँ यदि तुम सुनना चाहो।'' अजातशत्रु ने उत्तर दिया- ''यदि तुम मुझे ब्रह्म के विषय बताओगे तो मैं एक हजार गायें तुम्हें भेंटरूप में देने के लिए तैयार हूँ। आजकल तो जितने ब्रह्मज्ञान के इच्छुक है वे सभी मिथिला के राजा जनक को ही सर्वोच्च ब्रह्मवेता जानकर मिथिला नगर की ओर ही दौड़े जा रहे हैं। किन्तु यदि वास्तव में ही तुम मुझे ब्रह्म के विषय में समुचित ज्ञान कराओ तो दक्षिणा देने में तो मैं भी पीछे नहीं रहूँगा।''

अब गार्ग्य (दृप्तबालाकि) ने कहा, ''यह जो आदित्य में पुरुष है, मैं तो उसी की उपासना करता हूँ। मेरे लिए तो यही ब्रह्म है।'' अजातशत्रु ने उसके इस कथन का प्रतिवाद कर कहा- ''तुम्हारा यह कहना उचित नहीं है। यह तो ठीक है कि संसार के संचालन में आदित्य (सूर्य) की भी एक प्रमुख भूमिका है, वह अपनी ऊष्मा के बल पर सारे प्राणिजगत् को ऊष्मा प्रदान करता है, इसलिए हम उसे सारे भूतों का मूर्धास्थानीय मान सकते हैं, किन्तु यह मत समझो कि आदित्य ही ब्रह्म है। हाँ, यह अवश्य है कि आदित्योपासक-सूर्यशक्ति का उपयोग करनेवाला सारे प्राणियों में श्रेष्ठ और राजा हो जाता है।''

इस अनुच्छेद से इस कथानक के मुख्य भाग का आरम्भ होता है। इस आख्यायिका तात्त्विक भाव यह बताना है कि प्राय: मनुष्य सूर्य, चन्द्र, वायु, जल आदि भौतिक तत्त्वों की ही उन्हें परमात्मा जानकर उपासना करते हैं, किन्तु उनकी यह उपासना ईश्वरोपासना तो नहीं कहला सकती। परमात्मा तो सूर्य, चन्द्र, जल, वायू तथा अन्य भौतिक पदार्थों का सर्जक, नियामक तथा उनमें पृथक् शक्तियों का संचार करनेवाला है। यंह तो ठीक है कि यदि हम इन शक्तियों का अपने भौतिक कार्यों में उपयोग लें तो उससे हम संसार में अनेक प्रकार की सिद्धियाँ एवं उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु ये पदार्थ परमात्मा के तो स्थानापन्न कदापि नहीं हो सकते। प्राय: सूर्य की उपासना करनेवाले प्रात: उसे अर्ध्य देते हैं। जल के देवता वरूण की पूजा प्रचलित है। इसी प्रकार अन्य भौतिक पदार्थों की भी पूजा शताब्दियों से सभी देशों में प्रचलित है, किन्तु सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की ही पूजा-उपासना मनुष्य के लिए श्रेयस्कर मानी गई है। इसी पृष्ठभूमि में इस आख्यायिका का अध्ययन किया जाना चाहिए।

अब गार्ग्य बोला- ''मैं चन्द्रमा में जो शक्ति है, उसे ही ब्रह्म जानकर उपासता हूँ।'' अजातशत्रु ने इसका भी विरोध किया और कहा, ''ऐसा करना उचित नहीं है। यह चन्द्रमा परमात्मा नहीं है। यह तो सत्य है कि चन्द्रमा की शीतल किरणों में अनेक गुण हैं तथा उनसे पृथक-पृथक् लाभ लिये जा सकते है। इसलिए शास्त्रों में इसे श्वेत-शीतल किरणोंवाला सोम राजा कहा गया है। इस चन्द्रमा के उपयोग से भी बड़े-बड़े लाभ मिलते हैं, किन्तु यह मत भूलो कि परमात्मा इससे भिन्न है।''

अब की बार गार्ग्य ने विद्युत् को उपास्य बताया और उसे ही ब्रह्म कहकर पुकारा। अजातशत्रु ने पुन: उसका समाधान किया और उसे ही ब्रह्म कहकर पुकारा। अजातशत्रु ने पुन: उसका समाधान किया और कहा- ''तुम्हारा कहना इस सीमा तक तो उचित है कि विद्युत् एक तेजस्वी शक्ति है, परमात्मा ने इसे तेजस्वी बनाया है, किन्तु यही एकमेव उपास्य नहीं है। अन्तत: तो यह भी जड़ ही है। किन्तु यह सत्य है कि विद्युत् की उपासना (उपयोग) करनेवाला व्यक्ति इस शक्ति के भौतिक लाभ तो प्राप्त करता ही है।''

गार्ग्य का अगला कथन था कि वह आकाश में विद्यमान पुरुष को ब्रह्म जानकर उसकी उपासना करता है। अजातशत्रु के पास इसका भी उत्तर था। उसने कहा- ''यह ठीक है कि आकाश पूर्ण, व्यापक और अचल है, किन्तु यही तो सब-कुछ नहीं है। आकाश को तात्त्विक रूप से जानने के कुछ लाभ अवश्य हैं किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि उसे परमात्मा मान लिया जाए।''

गार्ग्य ने अब वायु को उपास्य बताया तो राजा नेभी वायु को अत्यन्त बलशाली, अनिरूद्ध गति, अपराजेय कहा- ''वायु की प्रचण्डता, उसके अत्यन्त गतिशील होने तथा अप्रतिम सामर्थ्य को कोई नहीं नकार सकता, किन्तु अन्तत: है तो वह भी एक भौतिक पदार्थ ही। उसकी अपनी शक्ति है। वायु का उपयोग करनेवाले विजेता, अजेय तथा प्रबल शक्तिवाले बन जाते हैं। यही उसकी उपासना (उपयोग में लेने) का लाभ है, इससे अधिक नहीं।''

गार्ग्य ने अब अग्नि को ही उपासना के योग्य ठहराया तो अजातशत्रु ने कहा, ''अग्नि की शक्ति अपरिमेय है। वह सब-कुछ भस्म कर देती है, किन्तु यह भी ध्यान रहे कि अग्नि को जो यह जलाने की शक्ति मिली, उसका स्रोत कोई अन्य है। अत: अग्नि का उपासक स्वयं तेजस्वी, ज्वलन्त तथा दुष्टों को संताप देनेवाला भले ही बन जाए, उससे अग्नि को ब्रह्म के तुल्य तो नहीं ठहराया जा सकता।

अब गार्ग्य ने कहा कि वह जलों का उपासक है क्योंकि जल में भी शक्ति है। अजातशत्रु का कहना था, ''निश्चय ही जल प्राणियों के जीवन का आधार है, अत: वह प्राणिमात्र के लिए अभीष्ट है, सभी

उसी की कामना करते हैं, परन्तु क्या हम जल को सर्वशक्तिमान् परमात्मा मान लें? जल के द्वारा अनेक प्रकार के लाभ लिये जा सकते हैं, बस यही कहना उचित है।''

अब तक आदित्य से लेकर जल-पर्यन्त दिव्य पदार्थों को ब्रह्म मानकर उपासना करने की बात गार्ग्य द्वारा कही गई। मध्यकालीन भारतीय चिन्तन में भौतिक पदार्थों में उनकी शक्ति के आधारभूत अभिमानी देवताओं की कल्पना कर ली गई थी। यह माना जाने लगा था कि सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल आदि के अधिष्ठाता उनसे भिन्न चेतन देवता हैं जो इन्हीं पदार्थों के भीतर रहते हैं। गार्ग्य के कथन का भाव भी यही था कि मैं तो सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थों में विद्यमान उनके अभिमानी देवताओं की ही ब्रह्म मानकर पूजा करता हूँ। किन्तु अजातशत्रु ने उसे स्वीकार नहीं किया। उसका कहना था कि निश्चय ही इन पदार्थों से अनेक भौतिक लाभ प्राप्त होते हैं, किन्तु ये ब्रह्म तो नहीं हैं। इनकी उपासना का फल भिन्न है, जबकि परमात्मा की उपासना से जो दिव्यानन्द की प्राप्ति तथा मोक्षलाभ होता है, वह तो अतुलनीय, सर्वोत्कृष्ट तथा मनुष्य के लिए परम प्राप्तव्य है।

आख्यायिका आगे बढ़ती है और गार्ग्य दिशाओं की उपासना की बात करता है। अजातशत्रु ने भी दिशाओं के महत्त्व को स्वीकार किया, किन्तु उन्हें परमात्मा मानने से इन्कार कर दिया। अब गार्ग्य भौतिक पदार्थों से हटकर मनुष्य के शरीर में रहनेवाले छायामय पुरुष, उपासना के समय सुनाई पड़ने वाले दिव्य नाद (इसे ही नाथपंथी योगियों ने अनहद नाद कहा है) तथा हृदय की उपासना की बात करता है तो अजातशत्रु ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा, ''शरीरस्थ ये चेतन शक्तियाँ या चेतनायुक्त पदार्थ भी अन्ततः नाशवान् ही हैं। वे मनुष्य का चरम लक्ष्य तो नहीं हो सकते और इनकी उपासना भी नहीं की जा सकती।''

गार्ग्य को सर्वथा मौन हुआ देखकर अजातशत्रु ने उससे पूछा, ''क्यों गार्ग्य, तुम्हारा ब्रह्मविचार इतना ही है?'' गार्ग्य ने कहा, ''हाँ, मैं तो इस विषय में इतना ही जानता हूँ।'' अज्ञातशत्रु ने कहा, ''यह तो पर्याप्त नहीं है। ब्रह्म तो इन आदित्यादि भूतों से कहीं बड़ा और महान् है।'' अब गार्ग्य ने कहा, ''यदि आप मुझे उस ब्रह्म का उपदेश करें तो मैं उपनीत होकर शिष्यभाव से आपके समक्ष उपस्थित होऊँ।'' अजातशत्रु के समक्ष एक धर्मसंकट उपस्थित हो गया। वह स्वयं तो क्षत्रिय है और गार्ग्य ब्राह्मण है। क्या क्षत्रिय ब्राह्मण को उपदेश देगा? क्योंकि सामान्यतया उपदेश देने का कार्य तो ब्राह्मण का है। तथापि अजातशत्रु ब्रह्मवेता है, इसलिए उसने गार्ग्य को आत्मतत्त्व का उपदेश देना स्वीकार किया।

अजातशत्रु गार्ग्य को एक सोए हुए पुरुष के समीप ले गया और उसे नाम लेकर पुकारा, किन्तु प्रगाढ़ निद्रा में होने के कारण वह व्यक्ति सोया ही रहा, उठा नहीं। इस पर अजातशत्रु ने उसका हाथ पकड़कर उसे उठाया तो वह उठ गया। यह सब दिखाकर गार्ग्य से अजातशत्रु ने पूछा ''बताओ, जब यह व्यक्ति सो रहा था, उस समय इसका चेतन आत्मा कहाँ था? जगने पर वह कहाँ से आ गया?'' गार्ग्य इसका कोई उत्तर नहीं दे सका।

गार्ग्य को समझाते हुए अजातशत्रु बोला, ''सुप्तावस्था में आत्मा अपने विज्ञानमय कोश में चला जाता है। उस समय इन्द्रियाँ भी इसी कोश में लीन रहती हैं। इसे स्वपिति की अवस्था कहते हैं। इस दशा में घ्राण, वाणी, नेत्र आदि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ सुप्तावस्था में रहती है। मन भी इस समय अक्रिय होता है। इससे भिन्न अवस्था को स्वप्न की दशा कहते हैं। उस समय में सोया पड़ा मनुष्य भी मन द्वारा कल्पित एक नए संसार को देखता है। वह कभी महाराजा बन जाता है तो कभी महाब्राह्मण, यह सब स्वप्न-मात्र है।...

''स्वप्न के आगे की अवस्था सुषुप्ति की है। इन्द्रियों के साथ ही मन भी पूर्णरूपेण सोया रहता है। जो आत्मा अपने स्वरूप में लीन रहता है, वह परमानन्द का अनुभव करता है। उस समय वह सुख-दुःख आदि सभी द्वन्द्वों से सर्वथा पृथक् रहकर आत्मानन्द की प्राप्ति करता है। सांख्य दर्शन में कहा गया है- **समाधि-सुषुप्ति-मोक्षेषु ब्रह्मरूपता** (५।११६)। जीव को ब्रह्म का सान्निध्य=समीपता तीन अवस्थाओं में प्राप्त होती है- प्रथम तो योगज समाधि, द्वितीय सुषुप्ति तथा तृतीय मोक्षलाभ। प्रथम दो अवस्थाएँ अल्पावधि की हैं जबकि मोक्ष की अवधि पर्याप्त लम्बी होती है।...

''यह बस आत्मा का ही पसारा है। जिस प्रकार एक मकड़ी अपने द्वारा फैलाए तार पर ऊपर-नीचे सब ओर स्वतन्त्र फिरती है, तथा जैसे अग्नि से चिनगारियाँ निकलकर, इतस्ततः गिरती हैं, उसी प्रकार इस आत्मा से ही समस्त प्राण, इन्द्रियाँ, देहगत पञ्चभूत आदि स्व-स्व कार्य करते हैं। यदि शरीर से आत्मा पृथक् हो जाए तो प्राणन-क्रिया, इन्द्रियों का विषयों से संयोग आदि सभी प्राकृत क्रियाएँ स्वतः ही बन्द हो जाएँगी। जो स्थिति व्यष्टि-शरीर में जीवात्मा की है, समष्टि-ब्रह्माण्ड में वही स्थिति परमात्मा की है। उसी की शक्ति से सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि प्रकाशमान है, वायु प्रवहनशील है, अग्नि में जलाने की शक्ति है, जल में द्रवणशीलता तथा पृथिवी में धारक शक्ति है। उसी परब्रह्म के कटाक्षमात्र से यह सारा ब्रह्माण्ड संचालित हो रहा है, जैसा कि अन्यत्र कहा गया है-

भयादस्याग्निरतपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ कठ. २।३।३

- बृहदारण्यकोपनिषद् २।१

❖❖❖

सद् व्यवहार

प्रो. रामविचार एम. ए.

पाँच मित्र भी और पाँच शुत्र भी :

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार मनुष्य के मित्र भी हैं और शत्रु भी। यदि वे वश में रहें तो मित्र हैं और यदि वे वश में न रहें तो शत्रु हैं। नियंत्रित काम से सन्तान की उत्पत्ति नियंत्रित क्रोध से व्यक्ति का सुधार, नियंत्रित लोभ से आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए धन संग्रह, नियंत्रित मोह से सन्तान का पालन और नियंत्रित अहङ्कार से आत्मा सम्मान की रक्षा होती है। परन्तु जब ये अनियंत्रित होते हैं तो मनुष्य के सन्ताप और विनाश के कारण बनते हैं। अत: विवेक द्वारा इनको नियंत्रित रखना ही श्रेयस्कर है।

वश में करने के उपाय :

विद्यार्थी जीवन और ब्रह्मचर्य के प्रकरण में काम को वश में करने के पाँच उपाय बताए गये हैं। उनको दुहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। क्रोध को वश में करने के कुछ उपाय लिखे जा रहे हैं। क्रोध आने पर गायत्री मन्त्र का जाप, मौन-धारण, उस स्थान से उठकर अन्यत्र चल देना, ठंडे पानी का सेवन, एक से सौ तक की गिनती करना, त्रुटि करने वाले के विषय में यह सोचना कि मुझसे भी ऐसी त्रुटि का होना सम्भव, विवेक के द्वारा क्रोध से बचने के लिए जागरूक रहना आदि-आदि। लोभ को वश में करने के उपाय हैं- संतोष, अधिक धन-सम्पत्ति से सन्तान के नैतिक पतन का भय, सरकार द्वारा परिसीमन, मरने पर सब कुछ यहीं रह जाने का विचार आदि। मोह के नियंत्रण का एक ही उपाय है कि ये सभी भोग्य पदार्थ एक दिन छोड़ने हैं। अहंकार को वशीभूत करने के उपाय यही है कि मनुष्य विचार करे हम जैसे संसार में व्यक्ति हैं और हमसे भी बढ़कर हैं। फिर अंहकार किस बात का?

शारीरिक व्यवहार :

किसी को निष्प्रयोजन शारीरिक कष्ट नहीं दें। अस्तेय (चोरी) से बचने के लिए लोभ पर नियंत्रण करना होगा। स्वयं आजीविका का उपाय न अपनाकर दूसरे के धन की प्राप्त करने की इच्छा का नियंत्रण करना होगा। सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की बातें अपने प्रसंगों में आ गई हैं।

टोकिए अवश्य :

यदि कोई अपनी प्रतिष्ठा में कुशब्द कहे अथवा दुर्व्यवहार करे तो उसे टोकिए अवश्य। टोकिए एकान्त में और सुधारात्मक ढंग से। टोकने से व्यक्ति अपना सुधार करता है, क्योंकि उसे अपनी त्रुटि का ज्ञान हो जाता है। यदि नहीं टोकेंगे तो उसका दुस्साहस बढ़ता जाएगा। यह व्यावहारिक सुधार के लिए आवश्यक है।

अपना व्यावहारिक धरातल ऊँचा उठायें :

मनुष्य को अपना व्यावहारिक धरातल ऊँचा उठाना चाहिए। वह दूसरे की पकड़ में न आये। अपितु उसे अपनी पकड़ में लाये। यह तभी सम्भव है कि वह अपने सोचने, बोलने और कर्म करने के स्तर को दूसरे के स्तर से ऊँचा उठाए।

नमस्ते :

कोई दूसरे को श्रद्धा, प्रेम और स्वार्थ के कारण नमस्ते करता है। जो अपने से भूमि-सम्पत्ति, धन, अधिकार, सम्बन्ध और आयु और विद्वत्ता में बड़े हों, उनको तो नमस्ते करना ही चाहिए। समान स्थिति वालों से यदि ५ बार पहले नमस्ते करें तो एक बार उसकी परीक्षा लें कि वह आपको पहले नमस्ते करता है। यदि वह पहले नमस्ते न करे तो ऐसे स्नेहशून्य व्यक्ति को नमस्ते करना छोड़ दें। नमस्ते उससे रखें जो नमस्ते के मूल्य को समझे। मुहल्लेदारों से अवश्यक नमस्ते रखें।

पड़ोसियों के साथ कभी भी नहीं बिगाड़नी चाहिए, परन्तु बिगाड़ का कोई-न-कोई कारण बन ही जाता है। पहले बच्चे लड़ते हैं, फिर माताएँ लड़ती हैं, फिर पुरूषों की बोलचाल बन्द हो ही जाती है। कभी पड़ोसी के अनुचित व्यवहार से ही सम्बन्ध कटु हो जाते हैं। यत्न करना चाहिए कि पड़ोसी के साथ निभाई जाए।

किसी के दु:ख में बिना बुलाए चले जाएँ, परन्तु सुख में बिन बुलाए न जाएँ। इससे आप का सम्मान बढ़ेगा। त्योहार व दिन किसी के घर भेंट देने तो जाएँ, परन्तु मिलने न जाएँ। जो भी आपका कोई काम करे उसका धन्यवाद अवश्य करें। इससे आप की कृतज्ञता का ज्ञापन होगा।

जीवन में सफलता के कुछ मूलमंत्र:

जीवन में सफलता के लिए परमात्मा पर दृढ विश्वास रखना चाहिए। आत्म विश्वास भी आवश्यक है। आत्म विश्वास होने पर दृढ़ संकल्प, साहस और उत्साह की वृद्धि होगी। इससे व्यक्ति कर्मशील होता है। मनुष्य को निश्चिन्तता का अभ्यास करना चाहिए। मन को प्रबोधित करना चाहिए कि चिन्ता करने का कोई लाभ नहीं चिन्ता करने से रक्तचाप, मधुमेह और मनोरोग हो जाएँगे। समस्या और बढ़ जाएगी। सदा आशावादी रहना चाहिए। पतझड़ ऋतु से ही वसन्त ऋतु निकलती है ऐसा विश्वास लेकर जीवन में चलना चाहिए। संसार की सारी समस्याओं का समाधान धीरज है। मनुष्य परमात्मविश्वास, आत्मविश्वास, निश्चिन्तता, आशावाद और धैर्य को अपना कर ही जीवन संग्राम में विजयी हो सकता है।

जीवन एक कर्त्तव्य-पालन :

जब बच्चे के हाथ में वर्णमाला की पुस्तिका पकड़ा दी जाती है तब से उसका कर्त्तव्य आरम्भ हो जाता है। पठन-काल की समाप्ति तक उसका कर्त्तव्य शिक्षा को प्राप्त करना है। आजीविका का साधन अपनाने और गृहस्थ में प्रवेश करने के पश्चात् उसके सम्मुख यही दो कर्त्तव्य रहते हैं। इन्हीं में ही उसका जीवन व्यतीत हो जाता है। बेटे-बेटियों को गृहस्थ में प्रविष्ट कराने के पश्चात् पोते-पोतियों और धेवते-धेवतियों के प्रति कर्त्तव्य पालन करता हुआ संसार से विदा हो जाता है। कर्त्तव्य-पालन का नाम ही जीवन है।

❖❖❖

अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

डा. अशोक आर्य– मण्डी डबवाली

महान् पुरुष अपने महान् कार्यों के पद चिन्ह सदा समय की धूलि पर छोड जाते हैं। इन्हीं चिन्हों को देखकर उनके अनुगामी अपना मार्ग बनाते हैं। ऐसे ही महान् पुरुषों में स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती ने फाल्गुन वदी १५ स. १९१३ वि. सन् १८५६ ई. को पंजाब के जिला तलवन के लाला नानकचन्द के यहां बृहस्पति नाम से जन्म लिया। यही बालक महात्मा मुन्शीराम के नाम से कार्यक्षेत्र में आया।

मुन्शीराम के पिता सरकारी कर्मचारी होने के कारण विभिन्न स्थानों पर बदलते रहते थे। इस कारण इस कुशाग्र बुद्धि बालक की शिक्षा बाधित रही। जब अध्यापक इनके भाईयों को पढ़ा रहा होता था उसे सुनकर ही आप बहुत कुछ सीख जाते थे। ऐसी तीव्र मेधा वाले बालक ने एक दिन वकालत पास कर अनेक अविस्मरणीय केसों में विजय प्राप्त की।

आप आरम्भ से ही धर्म प्रेमी होते हुए भी तात्कालीन प्रचलित ढोंगों व गन्दे आचरण को देखकर धर्म से तब तक विमुख रहे जब तक ''उस समय अनोखा जादूगर'' कहे जाने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान नहीं सुने। महर्षि को देख व सुन कर तो आप पूरी तरह से इनको समर्पित हो गए तथा पूरी दिनचर्या में स्वामी जी का साथ देने लगे। महर्षि से इस प्रकार के सम्बन्धों को देख अंग्रेज हाकिम तिलमिलाए किन्तु मुन्शीराम ने कभी भी इस बात की चिन्ता नहीं की। बरेली में जो महर्षि से 'ओ३म्' की चर्चा सुनी, इस से आप के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। धीरे धीरे ब्रह्म समाज तथा सर्वहितकारिणी सभा के भी सम्पर्क में आए किन्तु आर्य समाज सरीखी शान्ति आपको कहीं से न मिली। महर्षि के विचारों से प्रभावित हाने पर आपने सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि कृत अन्य ग्रन्थों का अध्ययन कर दृढ सिद्धान्तों को अपना कर अपने आप को आर्य समाज के कठोर सांचे मे ढाल लिया। स्वयं आर्य समाज के सदस्य बनकर हृदय में धैर्य को धारण किया।

मुन्शीराम जी वैदिक सिद्धान्तों पर इतने पक्के हो गए कि पिता जी के विशेष आग्रह पर भी निर्जला एकादशी का व्रत नहीं रखा किन्तु पिता जी की सेवा तथा आर्थिक सहायता में सदैव तत्पर रहे। बाद में पिता जी भी वैदिक सिद्धान्तों को समझने लगे। उनकी मृत्यु पर उनका दाह संस्कार भी वैदिक रीति से किया। मुन्शीराम जी की बढती लोकप्रियता से पौरानिक पण्डितों में खलबली मच गई। उन्होंने शास्त्रार्थ के लिए ललकारा, गुण्डागर्दी का प्रयास किया किन्तु नित्य कठोर व्यायाम करने वाले मुन्शीराम के सामने आने की कभी हिम्मत नही हुई। जाति बहिष्कार का भय भी तब भाग गया जब मुन्शीराम जी ने सत्य सब के सामने ला दिया। लाला देवराज जी का समर्थन व सहयोग आपको सदा मिलता रहता था। उनका कथन था कि ''कोई भी ढोंगी व्यक्ति कभी भी सुधारोन्मुखी व्यक्ति का बाल भी बांका नहीं कर सकता।'' आपके प्रभाव से ईसाईयों का प्रभाव भी फीका पडने लगा।

आपने देखा कि सर्वहितकारी कार्यों में आर्थिक कठिनाई आ रही है। इसे दूर करने के लिए आपने आटा रदी फण्ड आरम्भ किया। लोगों से अपील की कि प्रत्येक व्यक्ति अपने घर पर एक घडा रखे जिसमें एक मुठी आटा प्रतिदिन डाले तथा रद्दी अखबार भी एकत्रित कर रखे। बाद में वह इसे सर्वहितकारी कार्यों के लिए दान करे। इससे आपको प्राप्त भारी धन से आपने अछूतोद्धार व अन्य जन हितकारी कार्यों को आगे बढ़ाया तथा अब से अपना पूरा समय आर्य समाज के कार्यों को देने लगे।

आप पायनियर व ट्रिब्यून के नियमित पाठक थे। इस कारण राष्ट्रीय भावनाओं को भी बल मिला। अत: आप ने गांधी जी के अफ्रीका सत्याग्रह के अवसर पर सहयोग हेतु उन्हें धन भेज कर सहायता की तब बांद में कांग्रेस के मार्ग पर चलने लगे। आपने प्रत्येक जिले में कांग्रेस कमेटी स्थापित की। जालन्धर व होशियारपुर से आपको भारी सहयोग मिला। इस अवसर पर सर सैय्यद अहामद खां का विरोध भी आपके कदम रोक न सका। पंजाब में मार्शल ला लगा, चाहे रोलेट एक्ट विरोधी आन्दोलन या दिल्ली में कोई कांग्रेस का आन्दोलन हुआ, आप सर्वदा सर्वमान्य नेता स्वरूप अग्रणी दिखाई दिये। देहली में जब अंग्रेजी सेना ने निहत्थे लोगो पर गोली चलाने की तैयारी की तो अपने संगीनों के आगे अपना सीना तान कर कहा ''निर्दोष जनता पर गोली चलाने से पहले मेरी छाती में संगीन घोंप दो।''

आप जानते थे कि समाज सुधारने के लिए पहले अपना घर सुधारना आवश्यक है। अत: स्त्री शिक्षा का नारा लगाने से पहले अपनी पत्नी को शिक्षित किया। उसका घूंघट हटवाया, सैर करते समय उसे साथ ले जाने लगे। इस प्रकार स्त्री को समान अधिकार दिये। एक दिन ईसाई स्कूल से पढकर लौटी बेटी गा रही थी,

''एक बार ईसा बोल, तेरा क्या घटेगा मोल,
ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।''

यह सुनकर मुन्शीराम जी के हृदय में चोट लगी तथा तत्काल लाला देवराज जी के सहयोग से एक अपील की, जिससे प्राप्त धन से १९४७ वि. को जालन्धर में कन्या विद्यालय की स्थापना की। यही जालन्धर के कन्या महाविद्यालय के नाम से विख्यात विद्यालय आज स्त्री शिक्षा की अग्रणी संस्था है। इसी से आपका जन्म का नाम ''बृहस्पति'' सार्थक हुआ।

आपने प्रचारार्थ एक समाचार पत्र की आवश्यकता अनुभव की। अत: शीघ्र ही साथियों के सहयोग से ''सद्धर्म प्रचारक'' उर्दू पत्र आरम्भ किया। आप ने उर्दू की भाषा भी हिन्दी जैसी बना दी। चाहे मुसलमानों ने इसका विरोध किया किन्तु बाद में अन्यों ने भी आपही का अनुसरण किया। इस शोधित उर्दू में संस्कृत के शब्द अधिक होते थे। इसे आर्यसमाजी उर्दू कहा जाने लगा। बाद में यह पत्रिका हिन्दी में प्रकाशित होने लगी। इससे आर्य समाज के प्रचार को तीव्र गति मिली। इसी से ही राहु केतू का खण्डन करने वाले पहलवान् चिरंजी लाल सरीखे सहयोगी मिले। आपने मन्दिरों के अनुचित प्रयोग का सदा विरोध किया तथा सर्वप्रियता के लिए कभी नाम पट्ट की इच्छा नहीं की। सभी प्रकार की ऐषणाओं से सदा दूर रहे। यदि कार्यक्षेत्र मे कभी संस्था के अधिकारी आगे

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष–१० अंक–३ मुम्बई मार्च– २०१९ | पृष्ठ–१६ | मूल्य– रु. ९/–

फाल्गुन – २०७५ (२०१९) | Post Date : 25-03-2019 | MCN/136/2019-2021 MAHRIL 06007/3

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई–२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई–४०० ०५४. से प्रकाशित किया। ● दूरभाष : २६६० २८००/२६६० २०७५

प्रति, "देश"
प्रतिनिधि सभा, 15
-110 001

आए तो उनकी भी परवाह नहीं की। इसी कारण आपको धर्मवीर पण्डित लेखराम व पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी जी से अत्यधिक घनिष्टता थी। आप स्वाध्याय व धर्म प्रचार के स्रोत थे।

इसी कारण आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान बने तो शास्त्रार्थों की खूब धूम रही। आप नवयुवकों के लिए उत्साह व साहस का स्रोत थे। जब आप की पत्नि का देहान्त हुआ तो आपने चारों बच्चों की देखरेख का भार अपने भाई के कन्धों पर डाल दिया तथा स्वयं वेद प्रचार व अन्य सार्वजनिक कार्यों में पूरा समय देने लगे।

मुंशीराम ने मांस भक्षण का खूब विरोध किया। सत्य सिद्धान्तों पर चलते समय कभी कष्टों की या विरोध की चिन्ता नहीं की। डी ए वी आन्दोलन में कमियों को देख, विशेषरूप से संस्कृत शिक्षण की कमी के कारण पं. लेखराम, स्वामी पूर्णानन्द आदि के सहयोग से वैदिक शिक्षणालय खोलने का निर्णय लिया. जिस हेतु चार वर्ष तक निरन्तर कार्य किया। आपने इसमें आश्रम-पद्धति, गुरूकुल हेतु तीस सहस्र का स्थापना कोष स्थापित किया तथा नगर से काफी दूर जंगली क्षेत्र हरिद्वार के पास कांगडी स्थान पर गुरुकुल की स्थापना की, जो आज विश्व विद्यालय बन गया है। इस हेतु सरकारी सहायता की कोई मांग नहीं की गई।

आप की कार्य शैली तथा गुरूकुल की स्वतन्त्र शिक्षा पद्धति के कारण आपको कई कठिन परीक्षाओं का सामना करना पडा जैसे गुरूकुल के ब्रह्मचारियों को धनुर्विधा व घुड़सवारी की शिक्षा देने के प्रावधान से सरकार की क्रूर दृष्टि व सन्देह बढ गया। लाला लाजपत राय के निर्वासन पर तथा सरकारी नौकरी के समय भी निर्भीक व्यवहार के कारण आप पर सरकार का सन्देह बढता ही गया किन्तु आपने कभी चिन्ता नहीं की।

पटियाला में आर्यों पर विद्रोह के आरोप में सभी आर्य समाजियों को गिरफतार किया जाने लगा। आपने आगे आकर उनके लिए मुकदमा लडा तथा उन्हें सम्मान पूर्वक बरी करवाया।

इस प्रकार पन्द्रह वर्ष पर्यन्त निरन्तर समाज सेवा के पश्चात् आपने संन्यास दीक्षा ली तथा स्वामी श्रद्धानन्द नाम से विख्यात् हुए। आपने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर दी तथा घर छोड अब देहली को केन्द्र बना दिया। जो देहली राजधानी होते हुए भी पिछडी हुई उसे समय की धारा के साथ जोड दिया।

आपने जामा मस्जिद दिल्ली के पवित्र मंच से वेद मन्त्रों से एकता का सन्देश दिया। मुसलमान आपके दीवाने हो कर आपकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझने लगे। असहयोग आन्दोलन में खूब कार्य किया। जलियांवाला बाग काण्ड के बाद जब चालीस हजार लोग जेलों में थे, मार्शल ला लगा हुआ था, जब कांग्रेस का महाधिवेशन अमृतसर में करने का निर्णय हुआ, ऐसे भयानक अवसर पर आपने पंजाब में आकर लोगों का साहस बढाया। स्वयं स्वागत समिति के प्रधान बने। यह पहला अवसर था जब किसी संन्यासी ने यह पद सम्भाला।

आप अछूतोद्धार के तो मसीहा थे। कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में एतदर्श एक प्रस्ताव भी पेश किया। यह कार्य छोडने हेतु ईसाईयों का दिया गया प्रलोभन भी आपको रोक न शका।

आगरा, मथुरा व भरतपुर क्षेत्र के पांच लाख मलकाना राजपूत मुसलमान बन गए। आर्य समाज ने इन्हें शुद्ध करने का निर्णय लिया। इसके सभी अधिकार आप को दिये गए। आपके प्रयास से हिन्दू पण्डितों में भी सहानुभूति की भावना पैदा हुई। अन्त में सब पर गंगा जल छिडकर कर उन्हें वापिस अपने धर्म में लाया गया। आपने भारतीय हिन्दू सभा की स्थापना की। मालाबार में हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध भी आप अड गए। मोपला विद्रोह में भी आपने महत्वपूर्ण कार्य किया।

आपने हिन्दू संगठन का नाद बजाया, हिन्दू रक्षार्थ महावीर दलों का आन्दोलन व अन्य अनेक सभाए गठित की। इन सभी कारणों से मुसलमान आपकी जान के प्यासे बन गए। आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान बने। पन्द्रह वर्ष तक गुरुकुल कांगडी के अधिष्ठाता रहे। मथुरा में महर्षि स्वामी दयानन्द शताब्दी, हिन्दू शुद्धि सभा तथा दलितोद्धार सभा के आप कार्यशील प्रधान रहे।

अत्याधिक परिश्रम के परिणाम स्वरूप जीवन के अन्तिम सात वर्ष अस्वस्थ रहते हुए भी लम्बी लम्बी प्रचार यात्राएं करने से पुराने रोग भी पुन: जाग उठे। ऐसी ही अवस्था में जब आप श्रद्धानन्द बाजार देहली के भवन में रोग शैय्या पर पडे थे तो २३ दिसम्बर को एक धर्मान्ध मुसलमान ने गोलियां मारकर आपको शहीद कर दिया।

इस प्रकार आजीवन आर्यसमाज के लिए तन, मन, धन बलिदान करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती ने अपना बलिदान देकर आर्यों में एक नया साहस व प्रेरणा दी, वेद प्रचार का मार्ग प्रशस्त किया।

१०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी, गाजियाबाद
चलवार्ता : ०९७१८५२८०६८ दूरवार्ता: ०१२०२७७३४००
ई-मेल ashokarya1944@rediffmail.com